५

साधना के दो आदर्श

भारतीय दर्शन-शास्त्र में एक बहुत ही उलझा हुआ प्रश्न है कि आत्म-साधना के लिए कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है—साधु जीवन या गृहस्थ जीवन ? अनेक ऋषियों, मनीषियों एवं विचारकों ने अपना-अपना चिंतन इस विषय पर दिया है। जिस मार्ग से जिन्होंने साधना की, अपने स्वरूप का बोध प्राप्त किया, उन्होंने उसी मार्ग को श्रेष्ठ बतला दिया। किसी ने मुनि जीवन को श्रेष्ठ बतलाया, तो किसी ने गृहस्थ जीवन को। वैष्णव सम्प्रदाय के एक महान् आचार्य ने गृहस्थ जीवन की प्रशंसा में मुक्त-कण्ठ से कहा है—

"गृहस्थाश्रम समो धर्मो, न भूतो न भविष्यति।"

इस विचार को बहुत से व्यक्तियों ने माना भी है, और इस पर चले भी हैं। आज गृहस्थ जीवन की साधना का बड़े घटाटोप से मण्डन किया जाता है।

दूसरी ओर, भारतीय चिंतन की एक प्रमुख धारा है कि—गृहस्थ जीवन का प्राणी बहुत पामर प्राणी है। वह रात-दिन वासनाओं की गन्दगी में पड़ा रहता है, संघर्षों और स्वार्थों के अँधेरे में इधर-उधर भटकता रहता है। पत्नी और बच्चों की उलझन में ही जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षण गँवाता रहता है। सन्त कबीर ने इसी सन्दर्भ में कहा है—

"यह संसार काँटों की झाड़ी, उलझ-पुलझ मरि जाना है।"

यह गृहस्थ जीवन केवल काँटों से भरा हुआ ही नहीं है, अपितु काँटों की एक सघन झाड़ी ही है, जिसमें एक बार कोई प्राणी उलझ गया, तो बस फिर त्राण नहीं है। बलगम (खँखार) में फँसी मक्खी की तरह तड़प-तड़प कर ही प्राण गवाँ बैठता है। इसके दूसरे पार्श्व पर साधु जीवन का भी बड़ा ही रंगीन चित्र उपस्थित है—

"मन लागो मेरो यार फकीरी में,
जो सुख पायो राम भजन में,
सो सुख नहीं अमीरी में।"

इस वर्ग के विचारकों ने साधु-जीवन को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। कुछ विचारकों ने तो इसे जीते-जी मृत्यु तक की संज्ञा दे दी है। हाँ, वास्तव में जीते-जी मरना भी एक बहुत बड़ी कला है, वह तो जीवन-मुक्ति की कला है। वहाँ त्याग, वैराग्य की भट्टी में निरंतर जलते रहना पड़ता है।

मध्य-मार्ग :

भगवान् महावीर के सामने भी यह प्रश्न उठा था। संसार के हर महापुरुष के समक्ष यह प्रश्न आया है। हर साधारण व्यक्ति के समक्ष भी यह प्रश्न आता है। चूंकि संसार का हर प्राणी राहगिर है, पथिक है, अतः उसके समक्ष पहला प्रश्न राह का आता है। वह कौन-सी राह पर चले, जिससे जीवन में आनन्द का, उल्लास का वातावरण मिले। भगवान् महावीर ने इसका बहुत ही सुन्दर समाधान दिया है। उन्होंने दोनों 'अति' से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बचकर बीच का मार्ग दिखाया है। जीवन के दोनों किनारों से बचकर उनकी विचार-गंगा जीवन के बीचों-बीच प्रवाहित हुई है। समन्वयवाद या अनेकान्तवाद की सुन्दर नौका जब चिन्तन के सागर में बहने को हो, तब डूबने का तो कोई प्रश्न ही नहीं रहता। उनकी अनेकान्त-प्रधान वाणी से सत्य की उपलब्धि होती है। भगवान् की उसी वाणी को गणधरों ने इस रूप में प्रकट किया है—

"सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा।
गारत्थेहिं सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा॥"—उत्तरा, ५, २०.

कुछ साधु और भिक्षु ऐसे हैं कि साधना के मार्ग पर लड़खड़ाते चल रहे हैं, उन्हें दृष्टि नहीं मिली, किन्तु फिर भी चले जा रहे हैं। जीवन के अन्तर्-लक्ष्यों को नहीं पाकर ओघ-संज्ञा से ही चले जा रहे हैं—एक के पीछे एक! दृष्टि तो किसी एक को मिली, जिसे मार्ग का ज्ञान प्राप्त हुआ। वह चला उस मार्ग पर। बाकी साधक तो उस महान् साधक के पीछे चलते रहे, केवल उसकी वाणी के सहारे। और, कालान्तर में आगे आने वाले, उसकी वाणी को भी भूलते चले गए। उनकी दशा गाँव के उस कुत्ते के समान है कि—गाँव में चोर आया। जिस घर पर वह गया, उस घर का कुत्ता चोर को देखते ही भोंकने लग गया। अब क्या था, आसपास में दूसरे घरों के कुत्ते भी उस घर के कुत्ते की भौंकने की आवाज सुनकर भौंकने लग गए। इन भौंकनेवाले कुत्तों में से चोर को तो देखा उस पहले कुत्ते ने, परन्तु भौंकना अन्य सारे कुत्तों ने शुरू कर दिया। इस प्रकार चोर को देखने-वाला द्रष्टा कुत्ता तो एक ही है, अन्य सब भौंकना सुनकर केवल भौंकनेवाले हैं, द्रष्टा नहीं हैं। यदि दूसरे कुत्तों से भौंकने का कारण पूछा जाए तो यही कहेंगे कि मालूम नहीं, क्या बात है? उधर से भौंकने की आवाज आई, इसलिए हम भौंक रहे हैं। परन्तु, उनसे पूछा जाए कि क्या तुमने चोर को देखा है, वह चोर कैसा है, तो वे क्या बता सकेंगे? चूंकि वे तो सिर्फ उस द्रष्टा कुत्ते की आवाज पर ही भौंके जा रहे हैं। बात यह जरूर कड़वी है, जो संभवतः कुछ साथियों के मन को चोट कर सकती है, किन्तु सत्य यही है कि हजारों साधकों के झुंड में कोई एक ही ऐसा गुरु था, जो द्रष्टा था और जिसे आत्मा-परमात्मा के उस दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार हुआ था। सत्य की भूमिका को छूनेवाला वह एक ही था, और वह भी संसार का एक ही जीव था, किन्तु प्रबुद्ध जागृत जीव था। संसार के बाकी गुरु-चेले तो बस देखा-देखी भौंकनेवाले हैं। सत्य का साक्षात्कार और चीज है, और सत्य के साक्षात्कार का दंभ और चीज। देखा-देखी का योग, योग नहीं, रोग है। और वह रोग साधक को गला देता है। कहा भी है—

'देखादेखी साधे जोग, छीजे काया बाढ़े रोग।'

साधना का मानदण्ड :

संसार में एक दिन भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर आए। उन्होंने देखा कि चारों ओर ये भौंकनेवाले ही शोर मचा रहे हैं—कुछ गृहस्थ के वेष में, तो कुछ साधु के वेष में। उन्होंने पूछा—"क्यों भाई, तुम किसलिए भौंक रहे हो? क्या तुम्हें कुछ दिखाई पड़ा? वासना, लोभ, क्रोध, राग-द्वेष का चोर तुमने कहीं देखा है?" तो वे सब चुप हो गये। जो अपनी आँख बन्द कर सिर्फ एक-दूसरे के अनुकरण पर चल रहे थे, उन्हें टोका—"ऐ भौंकनेवालो! पहले देखो कि तुम किसके लिए भौंक रहे हो। उस चोर की सत्ता कहाँ है? किस रूप में है वह?"

बात यह है कि जो साधना के मार्ग पर दौड़ते तो जा रहे हैं, किन्तु जिन्हें अपनी मंजिल के बारे में कोई ज्ञान नहीं है, उन्हीं साधुओं के लिए भगवान् महावीर के दर्शन में कहा गया है कि वे जन्म-जन्मान्तर में साधु का बाना कितनी ही बार ले चुके हैं। यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन सब बातों को एकत्र किया जाए, तो मेरु पर्वत के समान एक गगनचुम्बी ऊँचा ढेर हो सकता है, परन्तु आत्मा के अन्तरतम में एक इंच भी परिवर्तन नहीं आया। इस प्रकार के अंध साधु जीवन से तो गृहस्थ ही अच्छा है, जो सेवा, अहिंसा और करुणा के मार्ग पर चल रहा है। गृहस्थ जीवन में अनेक संघर्ष आते हैं। उस पर परिवार, समाज आदि के रूप में विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों का बोझ रहता है। परन्तु, यदि उसमें भी ईमानदारी है, सेवा है, त्याग है और दृष्टि में निर्लिप्तता है, तो वह वेषधारी साधु से अच्छा है, बहुत अच्छा है। भगवान् महावीर ने साधना का मानदण्ड वेष को कभी नहीं माना है, भावना को माना है। अगर मानव सच्चे अर्थ में साधु बना, सही दृष्टि मिली, जीवन में त्याग और वैराग्य उतरा, लक्ष्य की झाँकी मिली, तो उन गृहस्थों से वह बहुत ऊँचा है, बहुत महान् है, जो कि काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि के सघन अंधकार में जीवन गुजार रहे हैं। अतः निष्कर्ष यह निकला कि चाहे साधु हो या गृहस्थ, यदि प्रामाणिकता और ईमानदारी से अपने लक्ष्य की ओर चल रहा है, तो ठीक है, अन्यथा दोनों की ही स्थिति कोई महत्त्व की नहीं है। हम कह चुके हैं कि साधना का मूल्यांकन साधु या गृहस्थ के नाम से नहीं होता, वेष से नहीं होता, आत्मा से होता है। चाहे छोटा हो या बड़ा, जिसमें ईमानदारी है, प्रामाणिकता है, वही श्रेष्ठ है, वही ऊँचा है।

दो समानान्तर रेखाएँ :

साधु और गृहस्थ को भगवान् के पुत्र के रूप में मान कर उन्हें परस्पर बड़ा और छोटा भाई बताया है। इस पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बड़ा भाई बनना अच्छा होता है या छोटा भाई? दोनों में कौन बड़ा है, कौन छोटा? कौन अच्छा है, कौन बुरा? महाभारत में पाण्डवों का उदाहरण है—युधिष्ठिर बड़े थे और दुर्योधन छोटा। एक ओर बलदेव बड़े थे और दूसरी ओर श्रीकृष्ण छोटे। यदि बड़ा बनना हो तो युधिष्ठिर का आदर्श अपनाओ और यदि छोटा बनना हो तो श्रीकृष्ण का। कृष्ण ने छोटे होकर भी जो महत्त्वपूर्ण कार्य किये, वे उन्हें महान् बना देते हैं। बड़ा भाई बनना चाहें, तो राम का उदाहरण भी सम्मुख है। बड़ा बनने के साथ उसका उत्तरदायित्व भी बहुत बड़ा हो जाता है। छोटे भाई के रूप में लक्ष्मण और भरत का चरित्र भी बहुत अनुकरणीय है। इन उज्ज्वल आदर्श परम्पराओं के विपरीत एक दूसरा मलिन पक्ष भी हमारे समक्ष आता है। मुगल इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं—जहाँ छोटे भाई ने बड़े भाई को और बड़े भाई ने छोटे भाई को खून से नहलाया है। राजा श्रेणिक का भी उदाहरण सामने आता है कि जहाँ पुत्र ने पिता को कारागृह में बन्द कर दिया। इधर राम का भी आदर्श है कि जिसने सिर्फ पिता के आदेश का पालन करने के लिए ही चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार किया। पिता-पुत्र के आदर्श, भाई-भाई के आदर्श और पति-पत्नी के आदर्श की सार्थकता इसी में है कि उन्हें जीवन में प्रामाणिकता के साथ उतारा जाए। आदर्श की श्रेष्ठता देश और काल से, जाति और वंश परम्परा से, बड़े-छोटे से नहीं नापी जाती, बल्कि वह नापी जाती है अन्दर की, सच्चाई से, अन्दर की प्रामाणिकता से।

इन आदर्शों का पालन तभी हो सकता है, जब जीवन में भय और प्रलोभनों पर विजय पाने की शक्ति हो। प्राणी मात्र इन्हीं दो पाटों के बीच पिसता आ रहा है। जितने विग्रह हुए हैं, लड़ाइयाँ हुई हैं, उन सबके मूल में ये ही दो कारण रहे हैं। जिस साधक ने इन पर विजय प्राप्त करली, वह निश्चय ही अपनी साधना के लक्ष्य को सफल कर चुका है। संसार के बड़े-बड़े सम्राट् उसके चरणों में नतमस्तक हो जाते हैं। यह त्यागियों का शासन अजेय शासन है। वह कभी समाप्त नहीं हो सकता। वहाँ छोटे-बड़े की प्रतिष्ठा नहीं, त्याग की प्रतिष्ठा होती है। जिसका त्याग अधिक तेजस्वी होता है, वही महान् होता है। यदि साधना का वह तेज गृहस्थ जीवन में प्रदीप्त हो सकता है, तो वह जीवन भी महान् हो सकता है। यदि साधु-जीवन में प्रकाशमान होता है, तो वह भी महान् है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु का वेष पहन कर भी यदि साधुता का स्पर्श नहीं हुआ, तो उस वेष से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। बाहर का महत्त्व नहीं, अन्दर का महत्त्व है।

दो आदर्श :

वाराणसी में संत कबीर साधना में लगे थे। वह बाहर में वस्त्रों का ताना-बाना बुन रहे थे। किन्तु, अन्दर में साधना का ताना-बाना बुनने में संलग्न थे। एक ब्राह्मण का पुत्र अनेक विद्याओं का अध्ययन करके पच्चीस वर्ष की अवस्था में जब जीवन के नये मोड़ पर आया, तो उसने विचार किया कि वह कौन-से जीवन में प्रवेश करे, साधु बने या गृहस्थाश्रम में जाए? अपनी इस उलझन को उसने कबीर के समक्ष रखा। कबीर उस समय ताना पूर रहे थे। प्रश्न सुनकर भी उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। युवक ने कुछ देर तक चुप रहकर प्रतीक्षा की, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। उसने फिर अपना प्रश्न दुहराया, लेकिन कबीर ने फिर भी जवाब नहीं दिया। तभी कबीर ने पत्नी को पुकारा—"जरा देखो तो ताना साफ करने का झब्बा कहाँ है?" इतना कहना था कि कबीर की पत्नी उसे खोजने लगी। दिन के सफेद उजाले में भी कबीर ने बिगड़ते हुए कहा—"देखती नहीं हो, कितना अंधकार है? चिराग लाकर देखो, पत्नी दौड़ती हुई चिराग लेकर आई, और लगी खोजने। झब्बा तो कबीर के कन्धे पर रखा था। किन्तु, फिर भी कबीर की पत्नी पति की इतनी आज्ञाकारिणी थी कि जैसा उसने कहा वैसा ही करने लग गई। युवक को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोच ही रहा था कि आखिर यह क्या माजरा है? इतने में कबीर ने अपने लड़के और लड़की को आवाज दी। जब वे आए, तो उन्हें भी वही झब्बा खोजने का आदेश दिया। और, वे भी चुपचाप खोजने लग गए। कुछ देर तक खोजने के बाद कबीर ने कहा—"अरे! यह तो मेरे कंधे पर रहा। अच्छा जाओ, अपना-अपना काम करो।" सभी लौट गए। युवक बड़ा परेशान था कि "यह कैसा मूर्ख है? कैसी विचित्र बातें करता है? मेरे प्रश्न का क्या खाक उत्तर देगा?" तभी कबीर ने उसकी ओर देखा, युवक ने फिर अपना प्रश्न दुहराया। कबीर ने कहा, मैं तो उत्तर दे चुका हूँ, तुम अभी समझे नहीं। अभी जो दृश्य तुमने देखा था, उससे सबक लेना चाहिए। यदि गृहस्थ बनना चाहते हो तो, ऐसे बनो कि तुम्हारे प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित घर वाले दिन को रात और रात को दिन मानने को भी तैयार हो जाएँ। तुम्हारे विवेक-पूर्ण कोमल व्यवहार में इतना आकर्षण हो कि परिवार का प्रत्येक सदस्य तुम्हारे प्रति अपने आप खिंचा रहे, तब तो गृहस्थ जीवन ठीक है। अन्यथा यदि घर कुरुक्षेत्र का मैदान बना रहे, आये दिन टकराहट होती रहे, तो इस गृहस्थ जीवन से कोई लाभ नहीं। और, यदि साधु बनना हो, तो चलो एक साधु के पास, तुम्हारा मार्ग-दर्शन करा दूं।

कबीर युवक को लेकर एक साधु के पास पहुँचे, जो गंगा तट पर एक बहुत ऊँचे टीले पर रहता था। कबीर ने उन्हें पुकारा तो वह वृद्ध साधु लड़खड़ाता हुआ धीरे-धीरे नीचे उतरा। कबीर ने कहा—"बस, आपके दर्शनों के लिए आया था, दर्शन हो गए।" साधु फिर धीरे-धीरे ऊपर चढ़ा, तो कबीर ने फिर पुकारा और साधु फिर नीचे आया और पूछा—"क्या कहना है?" कबीर ने कहा—"अभी समय नहीं है, फिर कभी आऊँगा, तब कहूँगा।" साधु फिर टीले पर चढ़ गया। कबीर ने तीसरी बार फिर पुकारा और साधु फिर नीचे आया। कबीर ने कहा—"ऐसे ही पुकार लिया, कोई खास बात नहीं है।" साधु उसी भाव से, उसी प्रसन्न मुद्रा से फिर वापिस लौट गया। उसके चेहरे पर कोई शिकन तक न आई।

कबीर ने युवक की ओर प्रश्न भरी दृष्टि डाली और बोले—"कुछ देखा? साधु बनना हो, तो ऐसा बनो। इतना अशक्त वृद्ध शरीर, आँखों की रोशनी कमजोर, ठीक तरह चला भी नहीं जाता। इतना सब कुछ होने पर भी, तुमने देखा, मैंने तीन बार पुकारा और तीनों बार उसी शान्त मुद्रा से नीचे आए और वैसे ही लौट गए। मुझ पर जरा भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध की झलक नहीं, घृणा नहीं, द्वेष नहीं। साधु बनना चाहते हो, तो ऐसे बनो कि तुममें इतनी सहिष्णुता रहे, इतनी क्षमा रहे। जीवन में प्रसन्नता के साथ कष्टों का सामना करने की क्षमता हो, तो साधु की ऊँची भूमिका पर जा सकते हो।"

इसी घटना के प्रकाश में हम भगवान् महावीर की वाणी का रहस्य समझ सकते हैं कि साधु जीवन हो या गृहस्थ जीवन, जब तक जीवन में आन्तरिक तेज नहीं जग पाए, प्रामाणिकता और सच्ची निष्ठा का भाव न हो, तो दोनों ही जीवन बदतर हैं। और, यदि इन सद्गुणों का समावेश जीवन में हो गया है, तो दोनों ही जीवन अच्छे हैं, श्रेष्ठ हैं, और उनसे आत्म-कल्याण का मार्ग सुगमता से प्रशस्त हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org